जनसत्ता

20 जून, 2019

संजीदगी पर सवाल

सरकारों की संवेदनशीलता और संजीदगी की परख तब अधिक होती है जब किसी प्राकृतिक आपदा या महामारी की स्थिति पैदा हो जाती है। बिहार के मुजफ्फरपुर इलाके में करीब दो हफ्ते से दिमागी बुखार का प्रकोप है। रोज ही बच्चों की मौत हो रही है। चिकित्सक समझ नहीं पा रहे कि इस महामारी पर काबू कैसे पाया जाए। इस बीच केंद्रीय स्वास्थ्य और स्वास्थ्य राज्यमंत्री स्थिति का जायजा ले और अपनी संवेदना प्रकट कर आए। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने इस बीमारी पर काबू पाने के लिए बेहतर सुविधाओं वाला एक अस्पताल बनाने का आश्वासन भी दिया। मगर सूबे के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार सबसे बाद में मरीजों का हाल जानने पहुंचे। वे पिछले सप्ताहांत दिल्ली में थे। सोमवार को पटना पहुंचने के बाद उन्होंने अफसरों की बैठक बुलाई, तब प्रशासन कुछ हरकत में आया। यानी करीब दस दिन बाद मुख्यमंत्री मुजफ्फरपुर पहुंचे और अस्पताल प्रबंधन और चिकित्सकों से बात करके वापस लौट पड़े। हालांकि उन्होंने बेहतर इलाज के निर्देश दिए और घोषणा की कि दिमागी बुखार से पीड़ित हर मरीज की चिकित्सा, चाहे वह सरकारी अस्पताल में हो या निजी, सारा खर्च राज्य सरकार वहन करेगी। पर मुख्यमंत्री के प्रति लोगों का रोष कम नहीं हुआ। उन्होंने उनके खिलाफ नारे लगाए।

दरअसल, दिमागी बुखार की समस्या नई नहीं है। यह हर साल इस मौसम में बच्चों को अपनी चपेट में लेता है और अनेक बच्चे काल कवलित हो जाते हैं। कोई ऐसा साल नहीं जब सौ से ऊपर बच्चे इस बीमारी से न मारे गए हों। इस साल भी यह संख्या करीब डेढ़ सौ पहुंच रही है। पांच साल पहले भी जब दिमागी बुखार से तीन सौ से ऊपर बच्चे मारे गए थे तो तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने विशेष सुविधाओं वाला एक अस्पताल बनवाने की घोषणा की थी। अब तक उस पर कोई पहल नहीं हुई है। यह बीमारी हर साल मुजफ्फरपुर इलाके में ही सबसे भयावह रूप लेती है। वहां एक ही सरकारी अस्पताल है, जिस पर लोग अपने बच्चों के इलाज के लिए निर्भर हैं। पर वहां न तो माकूल सुविधाएं हैं और न जांच के समुचित साधन। विचित्र है कि अभी तक इस बीमारी की कोई कारगर दवा नहीं खोजी जा सकी है। इसलिए चिकित्सकों की परेशानी समझी जा सकती है। फिर इस बुखार की चपेट में आने वाले ज्यादातर बच्चे गरीब तबके के होते हैं, उनके माता-पिता इलाज के लिए उन्हें किसी अच्छे अस्पताल में नहीं ले जा पाते। इन तथ्यों से वाकिफ होते हुए भी बिहार सरकार समय रहते इस समस्या से पार पाने के उपायों पर ध्यान नहीं देती, तो यह उसकी संवेदनहीनता का ही परिचायक है।

स्थिति गंभीर होने के बाद अस्पतालों के दौरे पर चले जाने या फिर मुफ्त इलाज की घोषणा कर देने भर से समस्या का हल नहीं निकल आता। स्वास्थ्य समवर्ती सूची का मामला है। केंद्र से तैयार होने वाली योजनाओं को आखिरकार राज्य सरकारों को ही लक्ष्य तक पहुंचाना होता है। गरीबों को बेहतर सुविधाएं उपलब्ध कराने को लेकर कई योजनाएं हैं, पर उनका लाभ लक्षित लोगों को नहीं मिल पा रहा, तो यह राज्य सरकार की नाकामी ही कही जाएगी। समझना मुश्किल है कि जिस इलाके में हर साल इसी मौसम में एक खास तरह का विषाणु अपने पांव पसारता और सैकड़ों बच्चों को लील जाता है, उस पर काबू पाने के लिए आज तक कोई कारगर उपाय करने की कोशिश क्यों नहीं की गई!

भ्रष्टाचार के खिलाफ

सरकार ने भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ जिस तरह कठोर कार्रवाई शुरू की है, वह शासन को भ्रष्टाचार मुक्त बनाने की दिशा में बड़ा कदम है। हफ्ते भर में सत्ताईस बड़े अधिकारियों को नौकरी से निकाल कर सरकार ने कड़ा संदेश दिया है कि अब भ्रष्टाचारियों के दिन लद चुके हैं। सरकार ने केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड (सीबीआइसी) के पंद्रह अधिकारियों को जबरन सेवानिवृत्त कर दिया है। हफ्ते भर पहले भारतीय राजस्व सेवा के बारह अफसरों को बाहर का रास्ता दिखा दिया गया था। इन सभी अधिकारियों पर घूसखोरी, वसूली, आय से अधिक संपत्ति बनाने जैसे मामले चल रहे हैं। पिछले कई सालों में यह पहला मौका है जब इतने सारे अधिकारियों को झटके में नाप दिया गया हो। यह देश का दुर्भाग्य ही रहा है कि भारी भ्रष्टाचार करने वालों के खिलाफ कार्रवाई करने में भी सरकारों ने कोई पहल नहीं की। इसी का परिणाम रहा कि भारत में भ्रष्टाचार सबसे बड़ी और लाइलाज बीमारी बन चुका है।

भ्रष्टाचार हर चुनाव में बड़ा मुद्दा बनता रहा है। हर दल दावा करता दिखता है कि सत्ता में आते ही भ्रष्टाचार पर लगाम लगाई जाएगी और भ्रष्ट अधिकारियों को जेल भेजा जाएगा। लेकिन हकीकत में ऐसा देखने को मिलता नहीं कि भ्रष्ट लोगों को सजा हुई हो। इसी का नतीजा है कि भारत में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार बढ़ता ही गया। हर काम के लिए घूस आम बात है। रोजमर्रा के काम और जरूरी सेवाओं तक में लोगों को पैसे देकर काम कराने को मजबूर होना पड़ता है। पुलिस थाने घूसखोरी और वसूली के अड्डों में तब्दील हो चुके हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। अदालतों से लेकर अस्पतालों तक में बिना घूस दिए काम करा पाना संभव नहीं होता। बड़े स्तरों पर जो भ्रष्टाचार हो रहा है उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। हजारों-करोड़ रुपए के बैंक घोटाले इसका प्रमाण हैं। आइएलएंडएफएस जैसे बड़े वित्तीय संस्थान का लाखों-करोड़ का घोटाला बता रहा है कि भ्रष्टाचार से देश का आर्थिक तंत्र किस कदर चरमरा चुका है। हर मामले की जांच में सामने यही आया है कि बड़े अफसरों के भ्रष्टाचार से ही ऐसे घोटाले संभव हो पाए। इसलिए सरकार ने अब भ्रष्ट अफसरों को नौकरी से निकालने का जो कदम उठाया है, वह यह उम्मीद बंधाने वाला है कि बड़ी मछलियां भी नहीं बचेंगी।

राज्य सरकारें हों या केंद्र सरकार, शायद ही कोई मंत्रालय ऐसा होगा जो भ्रष्टाचार से अछूता हो। भ्रष्टाचार के वैश्विक पैमाने पर भी भारत की हालत दयनीय है। हमारी गिनती सबसे भ्रष्ट मुल्कों में होती है। ताज्जुब तो इस बात का है कि हर राज्य सरकार में भ्रष्टाचार निरोधक विभाग होता है, केंद्र के पास भी भ्रष्टाचार से निपटने के लिए सीबीआइ, प्रवर्तन निदेशालय जैसी कई संस्थाएं और विभाग हैं, फिर भी भ्रष्टाचार पर लगाम नहीं लग पाती। ये विभाग दिखावे के लिए काम तो करते हैं, पर उसका हासिल कुछ नहीं बनता। भ्रष्टाचार में लिप्त लोग कानूनी पेचीदगियों और नियमों के मकड़जाल का भरपूर फायदा उठाते रहते हैं। भ्रष्टाचारियों को संरक्षण देने वाला तंत्र भी कम ताकतवर नहीं होता। पिछले साल देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी सीबीआइ में ही शीर्ष स्तर पर अधिकारियों ने एक-दूसरे पर जिस तरह भ्रष्टाचार के आरोप लगाए, वह यह बताने के लिए काफी है कि इन संस्थाओं को जिस बीमारी से लड़ना है वे खुद ही उससे ग्रस्त हैं। ऐसे में भ्रष्टाचारियों के चक्रव्यूह को भेद पाना आसान नहीं है। लेकिन सरकार चाहे तो क्या नहीं कर सकती! भ्रष्टाचार से लड़ना मुश्किल जरूर है, पर असंभव नहीं। इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति चाहिए।

कल्पमेधा

महत्त्वाकांक्षी के लिए ख्याति खारे जल के समान है, जिसे जितना पीता है, उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है।

-इमर्सन

मोटे अनाज की खेती पर संकट

रवि शंकर

मोटे अनाज की खेती को लेकर सरकार का रवैया बीते पांच सालों में जितना उत्साहवर्धक होना चाहिए, उतना दिखा नहीं। मोटे अनाज के बहुआयामी लाभों के बावजूद सरकार इनकी सरकारी खरीद, भंडारण और वितरण की कोई व्यवस्था नहीं करती। यही कारण है कि किसान इन फसलों की खेती मजबूरी में ही करते हैं।

एक समय था जब भारत की कृषि उत्पादन प्रणाली में काफी विविधता देखने को मिलती थी। गेहूं, चावल, जौ, राई, मक्का, ज्वार, बाजरा आदि अनेक प्रकार की फसलें उगाई जाती थीं। लेकिन समय के साथ मोटे अनाजों का रकबा कम होता गया। अब स्थिति यह है कि बदली कृषि नीति ने भारतीयों को गेहूं व चावल आदि जैसी फसलों पर निर्भर बना दिया है। इसके अलावा बाजारीकरण के बढ़ते प्रभाव से लोगों का मोटे अनाजों, दलहन और तिलहन की खेती से मोहभंग होता चला गया। हरित क्रांति के दौर में जिस एक फसली खेती को बढ़ावा मिला, उसमें धान और गेहूं जैसी फसलों को केंद्रीय भूमिका प्रदान की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि कुल कृषि भूमि में मोटे अनाजों की पैदावार घटती गई। किसान भी गेहूं व धान का रकबा ज्यादा से ज्यादा रखना चाहते हैं, क्योंकि इनका समर्थन मूल्य पर बिकना तय है। इन फसलों का समर्थन मूल्य हर साल बढ़ता है। साथ ही, समर्थन मूल्य पर राज्य सरकारें अतिरिक्त बोनस की घोषणा भी करती हैं। इसलिए किसान हर साल इन फसलों का रकबा बढ़ाते जा रहे हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों गेहूं और धान का रकबा बढ़ रहा है, त्यों-त्यों अन्य फसलों- दलहन, तिलहन और मोटे अनाज का रकबा लगातार घटता जा रहा है। प्रोटीन का मुख्य स्रोत माने जाने वाले मोटे अनाज जैसे ज्वार, कोदो, कुटकी, बाजरा अब दुर्लभ हो गए हैं। चिंता की बात यह है कि उच्च कैलोरी वाले ये परंपरागत मोटे अनाज अब हमारी थाली से गायब हो गए हैं। इनकी खेती पर्यावरण के लिए भी अच्छी है। पर पिछले पचास सालों में भारत में मोटे अनाज का रकबा साठ फीसद तक घटा है। इसके स्थान पर अब चावल और गेहूं की खेती ज्यादा होने लगी है। जबकि चावल और गेहूं ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं। इस पर शायद ही कोई ध्यान दे रहा हो या विचार कर रहा हो।

हम तिलहन और दालों का आयात करते हैं। हमारे छोटे-छोटे कस्बों के हाट बाजार तक में चीन से आयातित तुअर दाल बिक रही है। तुअर दाल शाकाहारियों के प्रमुख प्रोटीन का स्रोत है। मगर आजादी के बाद से इसके रकबे और पैदावार में लगातार गिरावट आ रही है। दलहनों की पैदावार में गिरावट की मुख्य वजह इसके रकबे में लगातार कमी होना है क्योंकि गेहूं और धान के मोह ने किसानों को दालों से दूर कर दिया है। तिलहन के मामले में हम हरित क्रांति के समय तक लगभग आत्मनिर्भर थे और करीब हर गांव में कोल्हू चलते थे। किसान अपने खेत में पैदा की गई मूंगफली, तिल और सरसों से तेल तैयार करवाते थे। लेकिन अब किसान गणेश की पूजा के लिए भी तिल बाजार से खरीदता है और बाजार में यह तिल आ रहा है चीन और ब्राजील से। अगर मलेशिया से पाम ऑयल, अमेरिका और ब्राजील से सोया ऑयल न आए तो देश में खाद्य तेलों को लेकर हाहाकार मच सकता है।

तिलहन की यह स्थिति इसलिए बनी है कि किसान ने इन्हें उगाना ही बंद कर दिया है। अब खेतों में केवल गेंहू, गन्ना और धान होने का सीधा-सा मतलब है कि ये फसलें हमारी फसलों की जैव विविधता को भी खत्म कर रही हैं। एक तरफ तो इन आसान फसलों ने जैविक विविधता को खत्म किया है दूसरी तरफ इनसे जल संकट बढ़ने का खतरा पैदा हो गया है। इन फसलों में दलहन, तिलहन और मोटे अनाज की तुलना में कई गुना अधिक पानी लगता है। यह पानी धरती से आता है, जिसका सीधा असर भूजल स्तर पर पड़ा है। इससे पेयजल की किल्लत बढ़ रही है और पानी दुर्लभ होता जा रहा है। पानी के साथ इन फसलों में यूरिया की खपत भी लगातार बढ़ती जा रही है, जिससे जमीन का उपजाऊपन नष्ट हो रहा है।

अब योजनाकारों को चिंतन करना है कि देश के लिए, किसान के लिए और आम आदमी के लिए गेहूं, गन्ना और धान के साथ अन्य फसलें भी जरूरी हैं। उन्हें भी न्यूनतम समर्थन मूल्य के साथ प्रोत्साहन और बाजार की व्यवस्था करने की जरूरत है। केवल गेहूं, गन्ना और धान का समर्थन मूल्य बढ़ा कर और उन पर बोनस घोषित कर चुनाव में किसानों के वोट तो बटोरे जा सकते हैं, मगर उसे अन्य जरूरी खाद्यान्न के लिए बाजार के हवाले कर उसका लाभ हानि में ही बदला जा रहा है। साथ ही, फसलों की जैविक विविधता के खात्मे के साथ जल संकट भी तेजी से बढ़ रहा है।

लंबे समय से मोटे अनाजों की खेती को मुख्यधारा में लाने के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। मोटे अनाजों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत वितरित करने की योजना बन रही है, जैसे राजस्थान में बाजरा और दक्षिण भारत में रागी का वितरण हुआ है। इन अनाजों के लिए लाभकारी समर्थन-मूल्य घोषित किए जाने, इनकी सरकारी खरीद, भंडारण व विपणन के लिए प्रभावी नेटवर्क बनाने जैसे कदम बड़े उठाने की जरूरत है। इसके अलावा मोटे अनाजों के अनुसंधान व विकास की सुविधाएं देश भर में स्थापित की जाएं, मोटे अनाजों की खेती के लिए रियायती दर पर ऋण सुविधा के लिए कानून बने और सरकार सबसिडी नीति की दिशा मोटे अनाजों की खेती की ओर भी मोड़े, तभी अपेक्षित परिणाम देखने को मिलेंगे। इस प्रकार बदलते मौसम चक्र, एक फसली खेती से हो रहे नुकसान आदि को देखते हुए मोटे अनाज की खेती भविष्य में उम्मीद की किरण के समान है। इससे न केवल कृषि का विकास होगा, बल्कि खाद्य-सुरक्षा के साथ-साथ उचित पोषण और स्वास्थ्य-सुरक्षा भी हासिल होगी।

मोटे अनाज की खेती को लेकर सरकार का रवैया बीते पांच साल में जितना उत्साहवर्धक होना चाहिए, उतना दिखा नहीं। मोटे अनाज के बहुआयामी लाभों के बावजूद सरकार इनकी सरकारी खरीद, भंडारण और वितरण की कोई व्यवस्था नहीं करती। यही कारण है कि किसान इन फसलों की खेती मजबूरी में ही करते हैं। ऐसे में यदि सरकार गेहूं और धान से आगे बढ़ कर इन अनाजों की खरीद, भंडारण और बिक्री का नेटवर्क बनाए तो किसान एक बार फिर मोटे अनाज की बड़े पैमाने पर खेती के लिए प्रोत्साहित हो सकता है। लेकिन इसके लिए जिस राजनीतिक इच्छाशक्ति की जरूरत है, उसका फिलहाल अभाव है। यह ठीक है कि बीते साल सरकार ने पोषक अनाज की पैदावार बढ़ाने के लिए मिशन शुरू किया है। इसके तहत देश के चौदह राज्यों के दो सौ से अधिक जिलों को चिह्नित किया गया है। इन राज्यों की जलवायु मोटे अनाज की खेती के अनुकूल है।

अब एक ऐसी नई हरित क्रांति लाने की आवश्यकता है जिससे मोटे अनाज की पैदावार में वृद्धि हो सके। इससे जलवायु परिवर्तन, ऊर्जा संकट, भू-जल ह्रास, स्वास्थ्य और खाद्यान्न संकट जैसी समस्याओं को भी काबू किया जा सकता है। इन फसलों को पानी, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की जरूरत कम पड़ती है और मिट्टी व भू-जल स्तर पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अलावा, इन फसलों को उगाने में खेती की लागत भी कम बैठती है। सूखा प्रतिरोधी होने के साथ-साथ ये फसलें कम उपजाऊ भूमि पर भी सफलता से उगाई जा सकती हैं। पौष्टिकता और सेहत के मामले में भी मोटे अनाज गेहूं व चावल पर भारी पड़ते हैं। इनमें प्रोटीन, फाइबर, कैल्शियम, लोहा, विटामिन और अन्य खनिज चावल और गेहूं की तुलना में दो गुने अधिक पाए जाते हैं। इन विशेषताओं के बावजूद मोटे अनाज किसानों, कृषि-वैज्ञानिकों और नीति-निर्धारकों की नजर में उपेक्षित हैं तो इसके पीछे प्रमुख कारण जनसाधारण में इनके प्रति फैली उपेक्षा की भावना है।

भूले-बिसरे फल

अरुणेंद्र नाथ वर्मा

दुनिया मेरे आगे

कोयल की कूक में 'बा-अदब बा-मुलाहिजा होशियार' सुन पाना सबके बस की बात नहीं। लेकिन आम के प्रेमियों के लिए उसमें फलों के राजा के आगमन की अग्रिम खबर होती है। इधर कोयल ने बावरी होकर कूकना शुरू किया, उधर आम बौराया। आम्रमंजरी पहले खट्टी अमियां बनती है, फिर धीरे-धीरे मदमाती मिठास से भरपूर होने लगती है। अंत में जब पीले, सिंदूरी रंगों से शृंगार करके वह आम से खास बन जाती है तो पेड़ों की डालियों से ससम्मान उतार कर, गर्वोन्मत्त आम को ठेस लगने से बचाते हुए बाजारों में लाकर फलों के राजा के रूप में सिंहासनारूढ़ कर दिया जाता है। हापुसवंशी हुआ तो सैकड़ों रुपए दर्जन में उसका मोल आंका जाता है और दशहरी, केसर, नीलम, बंगनपल्ली जैसे किसी सुपरिचित नाम से हुआ तो भी बाजार यथासंभव आम आदमी से उसकी दूरी बनाए रखता है। 'कुलीन' वंशों में जन्मीं, लेकिन लू लगने से जरा खराब हो गईं, आंधियों के प्रकोप से परिवार से बिछुड़ गईं या फिर समृद्ध महानगरों से दूर ही फले-फूले आमों की सवारी देहात की पगडंडियों में उलझ कर शहरों में सिंहासनारूढ़ होने पहुंच ही न सकीं, वे खास के बजाय आम बन कर आम आदमी के काम आती हैं।

ऐसे में मन द्रवित हो उठता है फलों के समाज को आहत करती भेदभाव और बंटवारे की बीमारी को देख कर। मिठास के बावजूद केवल तराशी गई शक्ल-सूरत वाले आमों जैसा नहीं होने के कारण बेचारे कई फल अपने समाज के हाशिये पर रह जाते हैं। स्वाद, रूप, गंध- हर तरह की जन्मजात 'कुलीनता' पर खुद ही रीझे हुए आम, सेब, अंगूर, नाशपाती जैसे फलों की पांत में स्ट्रॉबेरी और अनार जैसे फल भी अपनी रक्ताभ सुंदरता का गरूर छलकाते हुए बैठ जाते हैं। उधर किवी फ्रूट, पर्सिमोन, ड्रैगन फ्रूट जैसे विदेशी फल अपनी पाश्चात्य और आयातित छवि के कारण ऐसे अति-अभिजात मालूम होते हैं जैसे फलों के बीच आभिजात्य या एलीट तबके जैसा कुछ हो। ऐसे में याद आते हैं वे बेचारे बाजार की दौड़ में पिछड़ गए फल, जिन्होंने बाजार की चमक-दमक के आगे लज्जित होकर विस्मृति की चादर में अपना मुंह छिपा लिया। कुछ को हाशिये के बाहर कर दिया गया, लेकिन वे अब भी जीवित हैं, पेड़ों से टपक कर धरती के ममतामय आंचल में सांत्वना तलाशते हैं। बहुत हुआ तो गांव-गंवई के बच्चों, चरवाहों की हथेली में आकर टिक जाते हैं। आगे जाने का दुस्साहस करते भी हैं तो देहात के हाट के आगे नहीं। शहरों की युवा पीढ़ी उन्हें क्या जानेगी!

कटहल को सब्जी के अतिरिक्त एक सुस्वादु फल के रूप में भी बहुत से लोग जानते हैं। बेचारा पका हुआ कटहल, अनन्नास या पाइनएपल जैसी सुगंध और स्वाद के बावजूद अभिजात फलों की पंगत में नहीं बैठ पाता। पर मुझे कटहल की नहीं, फिलहाल बड़हल की याद आ रही है। पके कटहल से कुछ हद तक मिलते स्वाद वाले इस बेचारे फल को इसकी बेडौल आकृति और उभरे-फूले बाहरी हिस्से ने कहीं का न छोड़ा। शायद शक्ल-सूरत की कमजोरी ने बड़हल को बदहाल बना दिया है। अब तो वह देहातों में भी कम ही दिखता है। इस बदहाली में उसके साथ एक और गरीब है। उसके गोल-मोल आकार से भ्रमित होकर उसे जंगल-जलेबी का नाम देने वाले उसमें जलेबी की मिठास ढूंढ़ने लगें तो उसकी क्या गलती! इस बेचारी जलेबी को अच्छे दिनों में भी किसी ने पैसे खर्च करके नहीं खाया होगा। बच्चों के ढेलों-पत्थरों से आहत होकर धराशायी हो जाना ही हमेशा से उसकी नियति थी!

अपनी बदरंग दाढी-मूंछनुमा बनावट का मारा हुआ बेचारा कसेरू भी है जो ताल-तलैयों में अपनी घास जैसी देह में सुपारी के आकार के फल छिपाए रहता है। उनमें कच्चे नारियल जैसी मिठास और शीतलता होती है। अब न रहे ताल-तलैया, न रहा कसेरू। उधर पहाड़ों की गर्वीली ऊंचाइयों को भी इंसान ने खोद फेंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी, लेकिन उन्हें पूरी तरह मिटा नहीं पाया। अच्छा हुआ! वरना कहां जाता शहतूत जैसी मिठास और शक्ल वाला काफल, जो पहाड़ों में अपने सगोत्रीय और पड़ोसी अंजीरनुमा बेडू को बारहों मास मुस्कराने देता है, पर खुद केवल चैत में पकता है। इन दोनों ने उत्तराखंड को अपने स्वाद से भी बढ़ कर मीठा लोकगीत दिया है- 'बेडू पाको बारामासा, नरण काफल पाको चइता मेरी छैला..!'

जंगल-जलेबी, बड़हल, कसेरू, काफल, बेडू सब निरायास उगते हैं। मासूम आंखों से अपना गुण-ग्राहक तलाशते हैं। अंत में चुपचाप इर्द-गिर्द फैली अपनी जैसी गरीबी पर कुर्बान हो जाते हैं। विस्मृति के गर्भ में खो गए या खोते हुए ये बेचारे फल अपने समाज के हाशिये पर ही रह गए। पर सबसे ज्यादा दुखी है बेचारा गूलर, जिसके नसीब में फूल बन कर इठलाना भी नहीं लिखा था। हाल में एक खबर पर नजर गई और वह अगर सच है तो गूलर को अपवित्र मान कर कांवरिया यात्रियों के रास्तों के किनारे से हटा देने के बारे में सोचा जा रहा है। क्या इन बेचारों को भी फल मानने वाली आखिरी पीढ़ी मेरी ही पीढ़ी रह जाएगी?

नौकरशाही की सफाई

केंद्र सरकार ने जिस तरीके से भ्रष्ट अधिकारियों को बाहर का रास्ता दिखाया, उससे साफ संकेत मिले हैं कि पहले कार्यकाल में सफलतापूर्वक स्वच्छ भारत अभियान चलाने वाले प्रधानमंत्री का दूसरा कार्यकाल नौकरशाही में स्वच्छता लाने वाला होगा। पहले बारह वरिष्ठ वित्त अधिकारियों को बाहर का रास्ता दिखाने के बाद अब राजस्व सेवा के पंद्रह वरिष्ठ अधिकारियों को तत्काल प्रभाव से जबरन सेवानिवृत्त कर दिया गया है। केंद्र सरकार ने सेवा के सामान्य वित्त नियम 56-जे के तहत इन यह कार्रवाई की है। ये पंद्रह अधिकारी मुख्य अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड से संबंधित हैं।

अंग्रेज शासनकाल की बिगड़ैल नौकरशाही के लिए चलाया गया यह चिरप्रतीक्षित सफाई अभियान न केवल समयानुकूल बल्कि स्वागतयोग्य भी है। यह किसी से छिपा नहीं है कि आजादी के सात दशक बाद भी देश को पिछड़ा और गरीब रखने के लिए इसी नौकरशाही का एक बड़ा तबका सर्वाधिक जिम्मेवार है। यह ठीक है कि कुछ भ्रष्ट तत्त्वों के चलते पूरी नौकरशाही को भ्रष्ट नहीं कहा जा सकता लेकिन हर सरकारी विभाग में छिपी काली भेड़ों को पहचानना और उनके खिलाफ इसी तरह सख्त कार्रवाई करना अत्यंत जरूरी है।

खबरों के मुताबिक केंद्र सरकार ने ऐसे अधिकारियों की सूची बनाई जिनकी उम्र 50 साल से अधिक है और वे अपेक्षा के मुताबिक काम नहीं कर रहे हैं। ऐसे अधिकारियों को सरकार नियम 56 के तहत सेवानिवृत्त कर रही है। भ्रष्टाचार के खिलाफ शून्य सहनशीलता की नीति के तहत अपने पहले कार्यकाल में ऐसे अधिकारियों की सूची बनाने के बाद दूसरे कार्यकाल में भाजपा सरकार ने तेजी से इन अधिकारियों को बाहर का रास्ता दिखाना शुरू किया है। इन अधिकारियों पर घूसखोरी, फिरौती, कालेधन को सफेद करने, आय से अधिक संपत्ति अर्जन, किसी कंपनी को गलत फायदा पहुंचाने जैसे आरोप हैं। इनमें से अधिकांश अधिकारी पहले से ही सीबीआई के शिकंजे में हैं।

भाजपा को 2014 में स्पष्ट जनादेश मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली तत्कालीन यूपीए सरकार में व्यापक स्तर पर फैले भ्रष्टाचार के खिलाफ ही मिला था। यह ठीक है कि भाजपा सरकार के पहले कार्यकाल के दौरान उसके किसी मंत्री पर बेईमानी के गंभीर आरोप नहीं लगे पर यह तथ्य भी उतना ही ठीक है कि नौकरशाही में फैले भ्रष्टाचार के चलते आम लोगों को भ्रष्टाचार की समस्या से राहत नहीं मिली। प्रशासन में निचले स्तर पर भ्रष्टाचार की उसी तरह शिकायतें आती रहीं। एक ईमानदार सरकार में भ्रष्ट नौकरशाही को देख लोगों में यह भावना घर करती दिखी कि शायद इसका कोई स्थायी समाधान है ही नहीं और सरकार कोई भी आए, बाबू अपनी ही रीति-नीति चलेंगे! हर्ष का विषय है कि मौजूदा केंद्र सरकार ने जनता की इस परेशानी को न केवल समझा बल्कि इस दिशा में काम करना भी शुरू कर दिया है।

● *राकेश सैन, खंडाला फार्मिंग कॉलोनी, वीपीओ लिदड़ां, जालंधर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

स्वास्थ्य की सुध

भारत दावा करता है कि जियोपॉलिटिकल सूची में देश की रैंकिंग बढ़ती जा रही है लेकिन यहां स्वास्थ्य सेवाओं की हालत उसके इस दावे को शक में दायरे में खड़ा करती है। स्वास्थ्य सेवा पर भारत का कम खर्च सालों से जानकारों के लिए चिंता का विषय है। दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होने के बावजूद भारत अपने जीडीपी का महज 1.5 फीसद स्वास्थ्य पर खर्च करता है जो दुनिया के सबसे कम खर्च करने वाले देशों में से एक है। भारत ने अपने अंतरिम बजट में रक्षा के लिए जीडीपी का 10.6 प्रतिशत खर्च करने की बात कही जो स्वास्थ्य के मुकाबले पांच गुना ज्यादा है। 2017 में केंद्र सरकार ने वादा किया था कि 2025 तक देश के कुल जीडीपी का 2.5 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च किया जाएगा। अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना सरकार के लिए चुनौती है, लेकिन एक और चुनौती जो अभी केंद्र सरकार के सामने विशाल आकार लिए खड़ी है वह है देश की चरमरा चुकी सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था।

● *शिवानी पटेल, कानपुर*

शपथ और विपथ

हमारे सेक्यूलर देश की संसद का सत्र चल रहा है। वहां नवनिर्वाचित सांसदों का शपथ ग्रहण समारोह जारी है। अल्पसंख्यक समुदाय से बावस्ता एक निर्वाचित सदस्य असदुद्दीन ओवैसी शपथ लेने के लिए उठते हैं और तभी उनके सम्मान में माननीयों द्वारा सदन में 'जय श्री राम' और 'भारत माता की जय' के नारे बुलंद होते हैं। जवाब में वे उत्तेजित और हताश सांसद भी शपथ के अंत में 'जय भीम, अल्लाह हू अकबर और जय हिंद' बोल कर बैठ जाते हैं। अखबार वाले चुप हैं, मीडिया चुप है। अब जब जानकारी के रास्ते चुप हैं, तो जाहिर है कि जनता भी चुप है।

लेकिन हमारा ध्यान बार-बार माननीयों द्वारा ली गई शपथ के इन शब्दों पर जाकर रुक जाता है कि 'मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा'। एक समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य की वकालत करने वाले संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा की कसम का सदन के भीतर ही ऐसा तात्कालिक निर्वाह अभूतपूर्व है! भूतपूर्व होने की बारी तो शायद संविधान और उसकी रूह की है। अचरज वाली बात नहीं है। आखिरकार यही तो चाहते हैं 'हम भारत के लोग!'

● *राहुल मिश्र, विकास कॉलोनी, चिरगांव, झांसी*

नल से जल

नीति आयोग यह कहते हुए देशवासियों को सचेत कर रहा है कि 2020 तक 21 नगरों का भूजल खत्म हो जाएगा और 2030 तक देश की 40 फीसद आबादी की प्यास बुझाना भी मुश्किल हो जाएगा। इस डरावनी भविष्यवाणी के बाद केंद्र सरकार 'नल से जल' योजना की शुरुआत करने की बात कर रही है। 2024 तक सभी घरों में पाइप लाइन के जरिए जल देने का वादा किया जा रहा है। कैसे होगा, इसकी रूपरेखा नहीं बताई जा रही है। नदियों के पाट सिकुड़ रहे हैं। भूजल चट होता जा रहा है। अभी केवल अठारह फीसद घरों तक नल से जल जाता है। शेष बयासी फीसद के लिए काम करना है। वैसे कुछ भी असंभव नहीं है। जल प्रबंधन को सरकार और जनता अगर अपना प्रथम कर्तव्य मान ले तो इस कार्य को भी किया जा सकता है। लेकिन बरसात का जल हर कीमत पर बर्बाद हो जाने से रोकना पड़ेगा।

● *जंग बहादुर सिंह, गोलपहाड़ी, जमशेदपुर*